2

राजस्थानी लोक-गीत

सम्पूर्ण संसृति में परिव्याप्त तथाकथित लोक-मानस की सुख-दुखमयी अनुभूतियों की सामूहिक भाव-भीनी गेय अभिव्यक्ति को लोक-गीत है। लोक-गीतों के अति विस्तृत क्षेत्र में प्रकृति, पृथ्वी और निस्सीम व्योम तो क्या मानव-मन की अनन्त कल्पनाएँ भी समाविष्ट है। नर और नारी के सारे रूप (पुत्र, मित्र, भाई, पिता, पति, माता, पुत्री, बहिन, बुआ, सहेली, ननद, पत्नी, बहू, देवरानी, जेठानी आदि) इन गीतों में निरूपित है। समाज के समग्र संगठन इनमें वर्णित हैं। कौटुम्बिक बागडोर इन गीतों के हाथ में है। उत्तरदायित्वों और मर्यादाओं का बोध इन्हीं से कराया जाता है। मानव का शैशव लोरी के बहाने यहीं सोता है, यौवन इन्हीं के माध्यम से प्रेमोन्माद में प्रमत्त रहता है और वार्धक्य जीवन-यात्रा से श्रान्त हो इन्हीं गीतों से मन बहलाया करता है। ये गीत लोक-लीक के खींचनहार और प्रेमी हृदयों को प्रेम-जल से सींचनहार हैं। धार्मिकता का प्रचार-प्रसार भी इन्हीं से सम्भव है। कु-प्रथाओं, अन्धविश्वासों का उल्लेख भी ये गीत ही करते हैं, और उनका विरोध भी ये गीत ही करते हैं। सामाजिक मान्यताओं एवं मानदंडों के ये गीत महान कोष हैं। ये लोक-गीत विदग्ध हृदय को सान्त्वना देते हैं, प्रताड़ित को सम्बल प्रदान करते हैं, पथ-भ्रष्ट का मार्ग-निर्देशन करते हैं सांसारिकता की ओर सहज भाव से आकर्षित भी करते हैं और मोह-जाल में फँसे को सदुपदेश देते हैं, कार्यरत की थकावट हरते हैं। ये गीत मानव-जाति के जन्म जितने पुरातन एवं सद्य-प्रसूत शिशु जितने नूतन हैं। इन गीतों में मानव-संस्कृति का सांगोपांग चित्रण एवं व्यापक भावों का उल्लेख मिलता है। इन गीतों में अभिव्यक्त भाव शाश्वत जीवन के शाश्वत सन्देश हैं। इन लोक-गीतों में हृदय के सारल्य के साथ-साथ मनोमालिन्य की पराकाष्ठा वर्णित है। यहाँ आज्ञाकारिणी एवं पारिवारिक सदस्यों को ही अपने अमूल्य आभूषण स्वीकारने वाली वधुएँ मिलेंगी तो दूसरी ओर सास के नाक में दम करने वाली वधुएँ भी मिल जाएँगी। कपूत और सपूत के निर्णय की कसौटी भी लोक-गीत ही होते हैं। अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाली भावज से कलह करती ननद यहीं दृष्टिगोचर होगी तो भावज के मना करने पर भी नाई द्वारा (ननद को अपमानित करने की हेय भावना से प्रेरित हो) दी जाने वाली जली 'घूघरी' (गेहूँ व चने से उबले दाने के बदले लोक-लाज को ध्यान कर 'सोने-रूपे' की घूघरी

भावज को वापस करने वाली श्रेष्ठ ननद भी यहीं मिलेगी। देश का सांस्कृतिक चित्रण इन्हीं गीतों में हुआ है। ऐतिह्यवृत्तों ने परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से यही यथार्थ स्वरूप ग्रहण किया है। और नैतिक प्रतिमान तथा सामाजिक आदर्श भी इन्हीं गीतों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रस्थापित एवं हस्तांतरित किये गये हैं। लाल लाजपतराय के शब्दों में-

'देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि उनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।'[1]

किसी प्रस्तुत विपुल सामग्री में भाव, रूप, वर्ण्य-विषय आदि से सम्बन्धित पारस्परिक साम्य को आधारभूत मानते हुए उस सामग्री को विभिन्न खंडों-उपखंडों में विभक्त करना वर्गीकरण कहलाता है। वस्तुतः सैद्धान्तिक विवेचन का भी तात्पर्य है- सही वर्गीकरण। वर्गीकृत विभागों को क्रमशः ग्रहण करके ही हम किसी विषय को भली-भांति समझ सकते हैं। उपयुक्त एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण वही होता है जिसकी वर्गीकृत सामग्री अपने वर्ग-विशेष से ही पूर्णांशतः सम्बद्ध हो। उसका अन्य वर्गों में कथमपि प्रवेश न कराया जा सके। यदि अपवाद स्वरूप विभागों में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित हो भी तो कम-से-कम सीमा में रहना चाहिए।

लोक-गीतों के वर्गीकरण में अनेक मानदंड हो सकते हैं, पर राजस्थानी लोक-गीतों का वर्गीकरण करते समय लोक-गायकों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है।

लोक-गीतों में गायक का स्थान प्रमुख है-

'लोक-गीत' संज्ञा से अभिहित की जाने वाली सामूहिक संगीतात्मक अभिव्यक्तियाँ मौखिक परम्परा में सदा-सर्वदा के लिए विद्यमान रहती हैं। यथावसर सर्वसाधारण इनके माध्यम से अपना आह्लादन किया करता है। लोकगीतों का निर्माण भी समूह द्वारा होता है और समूह के उपयोग के लिए ही समूह द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। समूह के लिए का अर्थ है- कोई स्व-मनोरंजनार्थ गाता है तो कोई दूसरों के मनोरंजन हेतु गाता है। जैसे कई अवसरों पर स्त्रियाँ एवं पुरुष विविध प्रकार के गीत गाकर अपना मनोरंजन किया करते हैं तो कुछ पेशेवर जातियों के लोग गीत गाकर विशाल जन-समुदाय को प्रमुदित करते है। इसके अतिरिक्त, गायक गाते समय गीतों को छोटा-बड़ा भी करते रहते हैं। अथच लोक-गीतों के रचना-विधान एवं गायन-विधान में प्रमुख स्थान गायकों का है। गायक की प्रमुखता को ध्यान में रखते हुए विदित होगा कि लोक-गीतों के गायकों को स्पष्टतः दो कोटियों में रखा जा सकता है।

एक प्रकार के गायक वे हैं जो गायक होने के साथ-साथ गीत के श्रोता भी हैं। ये गायक किसी दूसरे श्रोता के लिए नहीं गाते। इन्हें हम 'गायक ही श्रोता' नाम से अभिहित कर सकते हैं। यह सामाजिक दल अपने मनोमोद के लिए ही गाता है। अवसर विशेष पर इस दल द्वारा लोक-गीतों का समायोजन किया जाता है।

1. कविता-कौमुदी, भाग 5, रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 77 (लाला लाजपतराय के पत्र से उद्धृत)।

Scanned by CamScanner

दूसरे प्रकार के गायक वे हैं जो जीविकोपार्जन हेतु दूसरों का मनोरंजन करने के लिए गाते हैं। इस वर्ग को 'गायक-पृथक-श्रोता पृथक' नाम देंगे। पेशेवर गायक इसी कोटि में परिगणित किये जायेंगे। इन्हें लोक-गीत पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिलते हैं। राजस्थान में अनेक व्यावसायिक जातियाँ (लंगा, ढोली, जोगी, मांगणियार, मिरासी, फदाळी, कलावत, नट, भील, ढाढी आदि) लोक-गीत गाने का काम किया करती हैं। इन गायकों के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि इन सभी जातियों की गायन-शैली अपनी है। कई लोक-गीत अलग-अलग जाति के गायकों द्वारा समान लय में गाये जाते हैं तो अनेक लोक-गीत ऐसे भी हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न जाति के गायक भिन्न-भिन्न लय और धुन में गाते हैं। इन विभिन्न गायक-जातियों के अपने-अपने लोक-वाद्य भी होते हैं। यथा- ढोली ढोल बजाकर गाता है, लंगे सारंगी का प्रयोग करते हैं तथा जोगी तन्दूरे या पूँगी के साथ गाते हैं। गीत के साथ संगीत का प्रयोग करना- इस वर्ग की उलेख्य विशेषता है। पेशेवर गायकों एवं गृह-लक्ष्मियों (गायक ही श्रोता) की गायन-शैली में भी पर्याप्त अन्तर है। इस सम्बन्ध में श्री सीताराम लाळस के विचार दृष्टव्य हैं-

'जाति या पेशेवर इन गायकों की गायन-शैली और परिवार की गायन-शैली में काफी अन्तर होता है।"[1]

इन पेशेवर गायकों के संगीत में राजस्थानी लोक-संगीत की उन्नत अवस्था के दर्शन होते हैं। इन गायकों को बचपन से ही गायन का अभ्यास करवाया जाता है। ये गायक गीत गाते समय विभिन्न राग-रागनियों (जैसे- सोरठ, माँड, भैरवी, कहरवा आदि) का नाम लेकर गीत गाते हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि आवश्यक नहीं है कि इन रागों का शास्त्रीय रागों के साम्य हो। केवल दोनों में नामकरण की समानता है, परन्तु स्वरायोजन में पर्याप्त अन्तर है। यह भी ज्ञातव्य है कि इस वर्ग के गायक भी अवसरानुकूल गीत गाया करते हैं।

उक्त विवेचन से हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों (गायक और अवसर) के समन्वित आधार पर राजस्थानी लोक-गीतों का वर्गीकरण किया जाना चाहिए।

राजस्थानी लोक-गीतों का वर्गीकरण

(अ) गायक ही श्रोता

(1) संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत,
(2) पर्वों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत,
(3) श्रम-गीत,
(4) विविध अवसरों पर गाये जाने वाले बाल-गीत।

(आ) गायक-पृथक-श्रोता-पृथक

(1) संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत,

1. राजस्थानी सबद-कोस, प्रथम भाग (भूमिका), सीताराम लाळस, पृ. 205

(2) सामाजिक समारोहों (महफिल) में गाये जाने वाले लोक-गीत।

लोक-गीतों की विपुल सामग्री उक्त शीर्षकों में पूर्णत: समाहित हो जाती है। इन बड़े शीर्षकों के अन्तर्गत कुछ उपशीर्षक रखकर आगे की पंक्तियों में राजस्थानी लोक-गीतों का सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

(अ) गायक ही श्रोता

यह पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि विभिन्न सामाजिक अवसरों पर स्त्री-वर्ग एवं पुरुष वर्ग विविध प्रकार के लोक-गीत गाकर अपना मनोरंजन करते है। जीवन की सम्पूर्ण यात्रा में अधिक अवसर ऐसे आते हैं जब स्त्री-वर्ग द्वारा ही गीतों का आयोजन किया जाता है। अत: हम कह सकते हैं कि इस वर्ग में नारी-समाज द्वारा गाये जाने वाले गीतों की विशिष्ट महत्ता है।

(1) संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत

जीवन में विविध विधानों का आयोजन भारतीय संस्कृति की अनूठी विशेषता है। प्रत्येक हिन्दू का जीवन चार अवस्थाओं, चार आश्रमों एवं सोलह संस्कारों में बँटा है। परन्तु आज संस्कारों का पूर्व-प्रचलित सविधि बन्धन नहीं रहा। कई व्यक्ति तो सोलह संस्कारों के नाम तक नहीं जानते।

हिन्दुओं की धार्मिक मान्यता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जन्मना अपवित्र होता है पर संस्कारों के द्वारा वह शुद्धत्व (ब्राह्मणत्व)को प्राप्त कर सकता है। प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के परिवर्तन के साथ-साथ समाज में संस्कारों की संख्या भी घटकर मुख्य रूप से केवल तीन (जन्म, विवाह, एवं मृत्यु) तक सीमित हो गयी है। कहीं-कहीं आज भी मुंडन एवं यज्ञोपवीत संस्कार का आयोजन भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त एवं प्रचलित मान्यता यह है कि मानव-जीवन अनेक अमानुषिक प्रभावों से घिरा रहता है, अत: इन अशुभ प्रभावों के निराकरण हेतु भी संस्कारों का आयोजन अनिवार्य माना गया।

उक्त तीन संस्कारों एवं अन्य कुछ संस्कारों के विधान से सम्बन्धित राजस्थान प्रदेश में असंख्य लोक-गीत प्रचलित है। इन संस्कारों को सम्पन्न करने में वेद-वर्णित विधान ब्राह्मणों का व्यापार रहा है तो लोक-प्रचलित मान्यताओं और अनुष्ठानों का उत्तरदायित्व गृहिणियों पर रहता है। नारी-समुदाय द्वारा सम्पन्न किया जाने वाला यह महत्कृत्य लोक-गीतों के मधुर स्वरायोजन से गुंजरित रहता है। आगे की पंक्तियों में सांस्कारिक लोक-गीतों का विवेचन प्रस्तुत है।

(क) जन्म-संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले गीत

मानव-योनि चौरासी लाख योनियों में श्रेष्ठ मानी गयी है। आत्मा भी मानव-शरीर प्राप्ति हेतु लालायित रहती है। मानव-योनि में जन्म लेना स्वयं आत्मा और जन्म के पश्चात उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य सामाजिक सदस्यों के लिए अतीव आह्लाद का

Scanned by CamScanner

विषय है। अत: नवजात के स्वागतार्थ विविध गानों एवं नृत्यों का परिजनों द्वारा आयोजन किया जाता रहा है।

राजस्थान प्रदेश में भी शिशु के जन्म से पूर्व एवं शिशु जन्म के पश्चात बहुत सारे लोक गीत गाये जाते हैं। इन सभी गीतों को राजस्थानी में 'जच्चा रा गीत' और 'जच्चावां मंगळ' कहकर सम्बोधित किया जाता है। नामकरण के दिन प्रसूता स्त्री बालक को लेकर जच्चा गृह से बाहर आती है। शिशु को जन्म देने के बाद वह इस दिन ही स्नान करके दूसरे कपड़े पहनती है। इस अवसर पर किये जाने वाले विधि-विधान को राजस्थानी में 'सूरज पूजणौ' कहा जाता है। माता बालक को गोदी में लेकर घर के आँगन में बाजोट पर बैठती है। गाय के गोबर से लिपे आँगन में खड़िया, मिट्टी व गेरू से अनेक चित्र चित्रित किये जाते है। ब्राह्मण आकर अग्नि-वेदी बनाता है। तब अग्नि देवता का आह्वान कर अग्नि प्रदीप्त करता है। फिर मंत्रोच्चार करता है। इन मंत्रों के उच्चारण से ही जन्मना शूद्र समझा जाने वाला बालक ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है, ऐसी मान्यता है। बालक को भी इस दिन स्नान करवाकर नये कपड़े पहनोय जाते हैं। मंत्रोच्चार के पश्चात माता शिशु को अपने दोनों हाथों में थामे अग्नि देव की परिक्रमा करती है। परिक्रमा की संख्या पांच और सात होती है। परिक्रमा के पश्चात वह सूर्य भगवान को जल चढ़ाती है। इस दिन से पूर्व प्रसूता घर के किसी भी पात्र को हाथ नहीं लगाया करती है। उसके खाने-पीने के बर्तन सब बर्तनों से विलग रखे जाते हैं। सूरज-पूजा का अनुष्ठान शिशु-जन्म के सातवें, नवें, पन्द्रहवें, इक्कीसवें या सत्ताईसवें दिन सम्पन्न किया जाता है। यहाँ यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि यदि शिशु का जन्म मूल नक्षत्र में होता है तब सूरज-पूजा का दिन जन्म-दिन से सातवाँ न होकर उक्त दिनों में से कोई दिन हुआ करता है। इसके अतिरिक्त, मूल नक्षत्र में शिशु का जन्म होने के कारण सूरज-पूजा के दिन अग्नि देवता के मंडप के समक्ष शिशु की माता के साथ शिशु का पिता भी बैठता है। ऐसा न करने पर शिशु के माता-पिता पर अशुभ घटना घटित होने की आशंका रहती है। मूल नक्षत्र में जन्म लेने के पर शिशु को इस दिन सत्ताईस कुओं का जल इकट्ठा कर स्नान करवाया जाता है। सूरज-पूजा के दिन प्रज्वलित अग्नि से बनी राख को किसी कुएँ में डाला जाता है। इस दिन शिशु की माता रिक्त घट को लेकर कुएँ पर जाती है। वहां कुंकुम, तांडुल आदि से कुएँ की पूजा करती है व पुन: लौटते समय गागर को भर लाती है। इसे 'जलवा पूजण' कहते हैं। इस दिन शिशु को चम्मच आदि से एक चम्मच जल पिलाया जाता है। इस दिन से लेकर महीने भर तक जच्चा को पौष्टिक पदार्थ युक्त आहार दिया जाता है जिससे कि माता को स्वास्थ्य लाभ हो और बालक के लिए पर्याप्त दूध प्राप्त हो सके। सूंठ, गोंद, अजवाइन, बादाम, नारियल आदि को कूटकर घी के साथ मिलाकर लड्डू बनाये जाते हैं जिसे राजस्थानी में 'सुवावड़' कहा जाता है। यद्यपि मुख्य रूप से सूरज-पूजा के दिन जच्चा के गीत गाये जाते हैं पर जच्चा के गीत इस दिन से पहले भी गाये जाते हैं। अत: यहाँ पर इन गीतों का गाये जाने का क्रमानुसार विवेचन करेंगे

जच्चा के गीतों का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव गर्भिणी को सातवाँ महीना लगने पर होता है। राजस्थान में युवती के प्रथम प्रसव के समय उसे पीहर वाले अपने यहाँ बुला लेते हैं। यदि पीहर और ससुराल एक ही गाँव में हो तो पीहर या ससुराल वाले घरों की स्त्रियाँ थाल में गुड़, बताशे आदि भरकर, जहाँ प्रसविनी निवास करती है (पीहर या ससुराल में), वहां गीत गाती हुई जाती है। इस अवसर को 'आगरणी' नाम से सम्बोधित किया जाता है। जच्चा के गीतों में प्रमुख रूप से ये भाव मिलते हैं।

(1) सन्तान के प्रति मनोवांछाएँ- नारी जीवन की सार्थकता मातृ-शक्ति प्राप्त करने में है। 'बाँझ' शब्द एक प्रकार से स्त्री के लिए गाली रूप में माना गया है। निस्सन्तान औरत को देवरानी-जेठानी के मर्मान्तिक व्यंग्य-वाक्यों को सहन करना पड़ता है। सवेरे पहले पहल उसका मुख देखने पर लोग अपशकुन मानते हैं। भरे-पूरे परिवार में वह सूनापन महसूस करती है। अपनी कोख के फलीभूत होने हेतु वह नाना प्रकार के टोने-टोटके करती है। अनेक देवी-देवताओं की मनौतियाँ मानती है। निस्सन्तान होने पर एक ललना अपने मानव-जीवन को निरर्थक मानती है। सन्तान-प्राप्ति हेतु राजस्थानी लोक-गीतों में विविध देवताओं का आह्वान किया जाता है, जिनमें भाग्य विधात्री बैमाता देवी, सूर्य, भैरव, सूर्य-पत्नी राणकदे आदि प्रमुख है। उदाहरणार्थ राजस्थान का लोक गीत यहां प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें सूर्य-पत्नी रणकदे से सन्तान-प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाती है:-

'छींका तौ पड़ियौ अे माता चूरमौ अे
ठणकै सिरांवण मांगण वालौ नहीं अे माता रणकदे
म्हांनै मांणस क्यांनै सिरज्या?'

कितना नैराश्य है! ऐसा लगता है कि मानो सारा जीवन जलकर भस्मीभूत हो गया है और फलस्वरूप एक गहरी-सी आह निकली है जो जीवन की निरर्थकता को प्रकट कर रही है। अपने इष्टदेव के प्रति खींझ है कि आपने हमें मनुष्य ही क्यों बनाया? बालक के खाने हेतु सुस्वादिष्ट चूरमा बनाना हमारे वश की बात थी जो हमने बना दिया। पर कोई रोकर चूरमा माँगने वाला हो तब ना! परवशता को स्वीकार लोक-मानस आराध्य देव का सम्बल ग्रहण करना चाहता है। परिणामत: भक्त के दैन्य से अभिभूत हो सन्तति दान से उसके मानव-जीवन को इष्टदेव कृतार्थ करते हैं।

सन्तानोत्पत्ति की आशा के निश्चय के उपरान्त पति-पत्नी के गर्भस्थ शिशु के पुत्र-पुत्री रूप पर चर्चा-परिचर्चा होती है। इस प्रकार के गीतों में भी विविध देवों से प्रार्थना की जाती है कि भ्रूणावस्थित शिशु पुत्र में परिणत हो जाए। इस प्रकार की प्रार्थनाएं वैदिककालीन समाज में भी की जाती थी।

राजस्थानी लोक-गीतों में वर्णन मिलता है कि प्राणेश्वर माना जाने वाला पति पुत्री-जन्म की आशंका पर इस प्रकार पूर्व चेतावनी भी देता दिखाई देता है।

Scanned by CamScanner

'(जी ओ) गोरी जे थारै जलमैला धीव
तौ खाट पिछोकड़ै घलावसां जी
(जी ओ) लाडू खारै लूंण रा जी
तौ पड़दौ तांणा काली कांमली रौ जी
कदैई नी मुखड़ै बोलसां जी
(तौ) म्हें तो सिंधावाला चाकरी जी।'

इसके विपरीत यदि पुत्र जन्म हुआ तो पति प्राणेश्वरी की सेवा में ही तल्लीन रहेगा। कभी भी नौकरी करने परदेस नहीं जायेगा। गोंद, अजवाइन आदि में खूब घी डलवाकर लड्डू बनवायेगा।

अपने पति के ऐसे कटु वचन सुन गर्भिणी अपने इष्टदेव का स्मरण करती है। यदि पुत्र जन्म न हुआ तो पति से प्रताड़ित होना पड़ेगा। सास का संताप उसके लिए जानलेवा सिद्ध होगा। पति सौत ले आयेगा। देवरानी-जेठानी व्यंग वचनों से उसके कोमल हृदय को छलनी-छलनी कर देगी। अपने बाँझपन को मिटाकर पुत्र प्राप्ति की कामना व्यक्त करती हुई रमणी भैरव की आराधना करती है। गीत में व्यक्त करुण भाव मौन रुदन करता हुआ पाठक या श्रोता के हृदय पर सीधा प्रभाव प्रकट करता है-

'सासू तो कैवे म्हारी बहवड़ बांझड़ी
परणियौ लावै ल्हौड़ी सौक
अेकलियै रा सीरी चढ़ती असवारी हेलौ सांभलौ
भेरु बाबा कदैयन भींजी दूधा कांचळी
कालूड़ा कदैयन कांधै टपकी लाळ
कासी रा बासी अमर बंधादौ नीं जुग में पालणौ
देरांणी जेठांणी बोलै अंवळा बोल
ज्यांर हींडै है पूतज पालणै
कासी रा बासी पुतर बिन बाजूं म्हे कुल में बांझड़ी।'

(2) दोहद- आधान रहने के पश्चात गर्भिणी स्त्री द्वारा अनेक वस्तुएँ खाने की इच्छा व्यक्त की जाती है। इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए वह श्वसुर, जेठ, देवर आदि से निवेदन करती है, पर ये सभी किसी-न-किसी बहाने उसकी बात टाल देते हैं। अन्ततः वह अपने प्रियतम के समक्ष अपने मन की लालसा व्यक्त करती है और पति अपनी प्राणेश्वरी की प्रत्येक बांछा पूरी करता है। इस प्रकार की इच्छा को हिन्दी में 'दोहद' कहा जाता है। गर्भिणी की इच्छापूर्ति यथाशक्ति आवश्यक मानी गयी है।

राजस्थानी लोक-गीतों में भी गर्भिणी द्वारा बेर, कैर, घेवर, फली, मतीरा, नींबू आदि खाने की इच्छा व्यक्त की गयी है। राजस्थानी में दोहद का समानार्थी शब्द 'हूंस पूरणी' है। इन सभी खाद्य पदार्थों के अलग-अलग गीत है। एक राजस्थानी गीत में गर्भाधान के पश्चात प्रसूता द्वारा प्रत्येक मास में अलग-अलग वस्तुएँ खाने की इच्छा प्रकट की गयी है-

'सातमौ मास उलरियौ म्हारौ बडबोरां मन रळियौ
कमर में चीस सिर मथवाय नैणां नींद न आवै
देखौ अे सय्यां म्हारै सांईनै री कुबद कमाई।
अबकै जी जाऊं तो म्हारै सांईनै री सेज कदैई नी जाऊं।'

'हूंस' के गीतों में कई गीत ऐसे भी है जिनमें सबके मना कर देने पर भी पति द्वारा पत्नी की इच्छापूर्ति हेतु लायी गयी वस्तुओं का वर्णन रहता है। ऐसा एक गीत उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है-

'बापजी सा आगै करूंली पुकार बबड़ नै भावै काकड़ी
कौ' तौ बवड़ घेवर देवूं छंटाय बागां में नहीं काकड़ी।'

इसी प्रकार जेठ और देवर मना करते जाते हैं पर अन्ततः पति की बारी आती है-

'साईना राजा आगै करूंली पुकार सायधण नै भावै काकड़ी
चढ़िया राज ढळतोड़ी रात जायनै उतरिया काकड़ियां रै खेत में
भावै जितरी जीमौ घर नार, बचै सो सहेल्यां में बैंचजो जी म्हारा राज।'

(3) प्रसव-वेदना एवं दाई- 'हूंस' के गीतों के पश्चात जच्चा के गीतों का यह वर्ग आता है जिसमें प्रसव-पीड़ा का कारुणिक चित्रण किया गया है। कई गीतों के प्रमुख रूप से प्रसव-पीड़ा के फलस्वरूप प्रसूता के शारीरिक प्रभावों का वर्णन किया गया है और अन्य कई गीतों में प्रसूता द्वारा प्रसव-पीड़ा से मुक्ति दिलाने हेतु दाई से प्रार्थना की गयी है। प्रसव-पीड़ा की असह्य वेदना से पत्नी व्यथित है। शर्मीली नार यह बात अपने पति से स्पष्टतः कैसे कह दे कि अब शीघ्र ही प्रसव होने वाला है? आसन्न-प्रसवा अनेकानेक कार्य बताकर पति को अपने शयन-कक्ष से बाहर भेजना चाहती है, पर 'भोला भरतार' उसकी बात समझ ही नहीं रहा है। लोक-गीत ने कैसी विकट परिस्थिति उत्पन्न कर दी है-

'नैनी सी नार नारेळी सो पेट
चालै है चीस उतावळी जी
ज्यूं चालै ज्यूं धण लुळ लुळ जाय
चालै है पीड़ उतावळी सा
करै है सांईना सूं वीणती जी
घड़ी दोय औ ढोला साथियां जाय
साथियां में चौपड़ खेलजौ सा।'

शारीरिक कष्ट की अतिशयता लज्जाशीला युवती के होठों का मौन भंग कर देती है। अन्ततोगत्वा कुलवधू को सब प्रयासों से हताश हो प्रिय को वास्तविक बात बतानी पड़ती है। वार्ता-श्रवण से ही उसे पितृ-कर्त्तव्य का बोध हो जाता है और वह अपनी प्रिया को प्रसव-पीड़ा से छुटकारा दिलाने हेतु 'दाई' को बुलाने चला जाता है। एक अन्य गीत में भी प्रसूता की प्रसव-वेदना, देवरानी, जेठानी का निश्चिंत होना तथा चिन्तित प्रियतम का

Scanned by CamScanner

उत्कंठित हो 'दाई' को बुलाने जाना का वर्णित है-

'कंवळै तौ ऊभा राजीड़ां री कुळ बहू, कोई कसमस दूखै है पेट
पौड़्यां तो धण री धगधगै जी
सासूजी म्हारा आळा भौळा, नणदल बाई राजकुंवार
म्हारी चिंत्या कुण करसी ओ राज
देरांणी जेठांणी मांडियो रूसणौ, म्हारी माय बसै परदेस
म्हारी चिंत्या गाढ़ा मारू करसी जी म्हारा राज।'

प्रियतम को 'लाज-सरम री बात' ज्यों ही ज्ञात होती है तो वह दाई को बुलाने जाता है। वह जाकर दाई से अनुनय-विनय करता है कि उसकी अर्द्धांगिनी प्रसव-पीड़ा से पीड़ित है। अत: हे दाई माई! शीघ्रातिशीघ्र मेरे घर चल। पर मौके-मौके की बात! आज दाई भी झूठे बहाने बना रही है। चलने के लिए मना कर रही है। अपनी असमर्थता प्रकट कर रही है। पर जो पिता बनने वाला है, वह ऐसी बहानेबाजियों का सहज ही में हल निकाल लेता है। उसे ज्ञात है कि प्रलोभन ही दाई में सामर्थ्य का संचार कर सकता है। बात कुछ बनती भी है और कुछ बढ़ती भी है। दाई ने तो पैदल चलने में भी असामर्थ्य व्यक्त किया। भला उत्साही जनक कब चूकने वाला था। चट से अपना घोड़ा उसे सौंप दिया। स्व-कर्म-गर्विता दाई का अहंकार भी लोक-गीतों में व्यक्त हुआ है-

'बैठी दाई तरवर बिछाय, बोलै दाई गरब भरी
कचमच माच्यौ कीच, पाळा नहीं रै चालां।'

उक्त सभी कठिनाइयों को सहर्ष झेलता हुआ पति नाना प्रकार के लोभ-लालच देकर दाई को बुला लाया। गृह-प्रवेश के पूर्व ही उसे बड़े ही अच्छे शकुन हुए। लोक-गीतों में व्यक्त ये शकुन भी लोक-मानस एवं लोक मान्यताओं के लिए महत्त्वपूर्ण हैं-

'गवाड़ै धड़ूक्यौ है सांड, माराजा नै सुगन भला जी।'

सांड-गर्जन के शकुन से यह व्यंजित हो गया है कि पुत्र का जन्म होाग। दाई ने आकर अपना कर्त्तव्य निभाया। कार्य पूरा होने पर वह 'नेग' अधिकारिणी है। पति को सूतिका-गृह से विलग रहने को कहा जाता है। पत्नी के कहने पर (कि सन्तानोत्पत्ति के तुरन्त बाद ही वह उसके पास समाचार भेज देगी) पति अपने साथियों के साथ जा बैठता है। पुत्र एवं पुत्री के जन्म के समाचार मात्र से होने वाली मानसिक एवं वैचारिक प्रतिक्रिया का निम्न लोक-गीत में बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है-

'जी भळै थे सांमली हथायां बैठौ जी बाईसा रा बीरा
जी थांरै झमकै बधाई मेलूं ओ बाईसा रा बीरा
जी थांरै पूत हुयौ घर आव'औ बाईसा रा बीरा।'

× × ×

'हे थांरै मिसरी रौ सीरो रंधावूं जी म्हारी सांवळी सायधण
हे थांरै कदैय न पीवर मेलूं जी म्हारी सांवळी सायधण

हे थांनै नित नित लेवण आवूं जी म्हारी सांवळी सायधण
हे थांरौ मैलां मांन बधावूं जी म्हारी सांवळी सायधण।'

× × ×

'जी म्हांनै साथीड़ा में लाजां मारिया जी म्हारी सांवळी सायधण
हे म्हांनै भाईड़ा में नीचा रखिया जी म्हारी सांवळी सायधण
हे थारै टूटौ डुखलियौ डळावूं जी म्हारी सांवळी सायधण।'

लोक-गीतों ने जहां भोली-भाली युवती का चित्रण किया है, जो प्रसव-पीड़ा से अत्यन्त व्याकुल है, तो साथ ही ऐसी चतुर स्त्री का भी चित्र खींचा है जो पति द्वारा दाई को दिये गये वचनों के अनुकूल चलना चाहती ही नहीं। वह कहती है कि प्रसव-वेदना तो उसके आने से पूर्व ही प्रसव हो जाने के कारण मिट गयी थी। अत: ऐसी अवस्था में दाई को किसी वस्तु की प्राप्ति का कोई अधिकार नहीं है।

युगानुकूल साधनोपलब्धियों के साथ-साथ लोक-गीतों के वर्णनों में कुछ-कुछ परिवर्तन आते रहते हैं। आधुनिक काल में शहरों में दाइयों का प्रभाव अस्पतालों के कारण से मिटता जा रहा है। इसकी शिकायत एक लोक-गीत में बहुत ही सुन्दर ढंग से हुई हैं-

'जच्चा नै अेसा जुलम किया, अंगरेजी जापा सरू किया
दाई को बुलाणा बंद किया, नरसों को बुलाणा सरू किया।
नणदी को बुलाणा बंद किया, बहिना को बुलाणा सरू किया।'

उक्त गीत में युगानुरूप परिवर्तित होने वाली समाजिक धारणाओं का वर्णन किया गया है, इसके अतिरिक्त पत्नीशासित पति पर भी परोक्ष रूप से करारा व्यंग्य है।

(4) प्रसव व लोक-विश्वास- लोक मानस अन्धविश्वासों एवं परम्परित मान्यताओं का आगार होता है। लोक-गीतों में जच्चा के लिए प्रसव के पूर्व एवं प्रसव के पश्चात कई दिनों तक सूतिका-गृह से बाहर आना निषिद्ध है। कहीं इधर-उधर आने से उसे नजर न लग जाये। सन्ध्या समय तो जच्चा का गृह से बाहर आना बहुत ही खतरनाक माना गया है। क्योंकि लोक-विश्वासानुसार अति मानवीय शक्तियां मध्यान्ह या सन्ध्या समय ही अपना कु-प्रभाव डालती है। इन धारणाओं की इस लोक-गीत में विवेचना की गयी है। और तो और, लोक-मानस जल के समीप भूत-प्रेतादि का निवास स्वीकारता है। अत: वहां जाना जच्चा के लिए वर्जित है-

'बंस बधावण म्हारी जच्चा, थूं सांझ न पर घर जाय
दोय सय्यां बुलायदां घर ही मिळ मिळ जाय
हिरणाखी म्हारी जच्चा ए, थू सांझ न सरवर जाय
दोय मसक ढोळायदां तखत बैठ जच्चा न्हाय।'

पड़ौसियों की नजर तक से भी जच्चा को बचाने के प्रयत्न करने पड़ते हैं। लोक-विश्वासानुसार यदि किसी की किसी को नजर लग जाती है तो उससे नजर लगने वाले पर 'थुथकी न्हखवाई' जाय तो नजर का असर नष्ट हो जाता है। ऐसा ही जच्चा के साथ

Scanned by CamScanner

हुआ, अत: पड़ौसिन को बुलाना जरूरी हो गया-

'ताव नहीं मथवाय नहीं है, लारली पाड़ौसण निजर लगाई
लारली पाड़ौसण सायबै उरी रै बुलाई, जच्चा ने थुथकी न्हखवाई।'

जिस प्रकार से विविध शकुन पुत्र या पुत्री के जन्म के सम्बन्ध में पूर्व-संकेत देते हैं, उसी प्रकार पति या पत्नी के स्वप्न भी इस प्रकार की भविष्यवाणी के आधार होते हैं। इस प्रसंग की पुष्टि हेतु निम्नलिखित पंक्तिया दृष्टव्य हैं-

'सूती ओ जोड़ी रा ढोला सुखभर नींद
सूती नै सपनौ म्हांनै आवियौ जी म्हारा राज
लाध्यौ म्हांनै सपनै में नौसर हार
सोळै मांसा री लाधी सांकळी जी म्हारा राज
हूसी अे मिरगानेणी थारै लाडल पूत
अेकज हूसी सुगणी धीवड़ी जी म्हारा राज।'

(5) पुत्र जन्मोत्सव एवं लोक-परम्पराएँ-इस प्रकार विचारों के आरोह-अवरोह में निमग्न जच्चा ने कुलदीप को जन्म दिया। सास, ननद, देवरानी, जेठानी सभी उनसे खिन्न थीं। प्रसव-वेदना के समय कोई पास तक नहीं आयी। पर सद्य-प्रसूत शिशु के बाल-रोदन का श्रवणकर वे सभी भागी हुई जच्चा के शयन-कक्ष के समीप आ पहुँची। पिता की प्रसन्नता का कोई ठिकाना ही नहीं है। आज वह सर्वस्व लुटा देना चाहता है। इस दिन जितना दिया जाय उतना ही कम है। ऐसे अवसर पर खुले हाथ देने की तो यहाँ परम्परा ही रही है-

'रण चढ़ण, कंकण, बंधण, पुत्र-बधाई चाव
अै तीनूं दिन त्याग रा, कहा रंक कहा राव।'

भला लोक-साहित्य इस लाग-डाट में भी पीछे रहने वाला कब है-

'हे थारै गीगौ ए जलमियौ आधी रात अे
हे थारै गुळ बैच्यो परभारत अे
उठौ मानेतण खोलो कोथळो, बैंचो बधायां दोनूं हाथ सूं अे।'

पर पुत्र-जन्म की प्रसन्नता असीमित जो ठहरी। उसके ननिहाल में जन्म लेने पर उसके पितृपक्ष के लोग तो इस हर्ष-समाचार से अनभिज्ञ ही हैं और यदि उसका जन्म-पितृगृह में हुआ है तो उसके नाना-नानी, मामा-मामी इस शुभ समाचार के श्रवण हेतु उसके गाँव को जाने वाले पथ की ओर ही निर्निमेष दृष्टि से देख रहे हैं। अरे! यह क्या? कोई उस रास्ते पर आतुर पथिक इस ओर तेज कदम बढ़ाते हुए आ रहा है। ठीक ही तो है। राजस्थान में प्रचलित प्रथा के अनुसार नवजात पुत्र के पदचिह्न कुंकुंम के घोळ में एक कागज पर अंकित कर उस कागज को उसके ननिहाल या पितृगृह भेजा जाता है। शिशु की माता अपने प्रिय से कह रही है कि शिशु के 'पगलियै' लिखकर मेरे पिता के यहाँ भेजो। पत्र ले जाने वाले को बहुत द्रव्य पारितोषिक रूप में मिलेगा।

'जच्चा रांणी जायौ है पूत
पगल्या लिख मेलौ भंवरसा म्हारे बाप रै
म्हारा बाभौसा कही जै दातार
घुड़ला तो देसी नाईजी थांनै हींसता।'

जन्म के तीसरे दिन रात्रिकाल में नवजात शिशु के सिरहाने की ओर एक श्वेत कागज, स्याही की दवात एवं कलम रख दिये जाते हैं। इस सन्दर्भ में यह मान्यता है कि इस दिन भाग्य-विधात्री देवी भाग्य लिखने हेतु आती है। तदनन्तर निश्चित दिवस पर सूर्य-पूजा की जाती है। इस दिन उक्त सभी प्रकार के गीत गाये जाते हैं। यह समारोह बहुत ठाट-बाट से मनाया जाता है।

गृह के मुख्य द्वार पर ढोल बज रहा है। शिशु की बुआ अपनी कुछ सहेलियों के 'झूलरे' को लिए आँगन में 'मांडणै मांड रही' है और साथ ही गीत गा रही है। वृद्धा दादी थालियाँ भर-भरकर गुड़ बाँट रही है। दाई अपने कार्य में मग्न है। आज उसे भी तो 'नेग' मिलने वाला है। ब्राह्मण सूर्य-पूजा के विधि-विधान में दत्तचित्त है। सभी कृत्य नाटकीय ढंग से सम्पन्न हो रहे हैं। सभी को अपना-अपना कर्त्तव्य-बोध कैसे हो गया? कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोक-गीतों का, जिनमें समाजिक उत्तरदायित्वों एवं कर्म-विभाजन का वर्णन हुआ है, समाज-विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। ऐसा ही एक गीत यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है-

'थे ई दाई माई भल आविया, जी म्हारै हालरियै रौ नाळौ मौळाय
हालरियै रौ नाळौ भल मौळियौ जी, म्हारा सासूजी ने बैग बुलाव
थे ई ओ सासूजी भल आविया, जी म्हारी जेठांणी ने बैग बुलाव
थे ई जो जेठांणी जी भल आविया जी, म्हारौ साळां में ढोलियौ ढळाव
साळां में ढोलियौ भल ढाळियौ जी, म्हारै नाईजी ने बैग बुलाव
थे ई नाईजी भल आविया, जी म्हारौ गीत कडूंबौ बुलाय
गीत कडूंबो भल-आविया जी, म्हारै हालरियै रा कोड कराय
हालरियै हरख करावियो जी, म्हारै नणद बाई नै बैग बुलाव
थे ई ओ बाईसा भल आविया जी, म्हारी साळां में साखिया कोराय
साळां में साखिया भल कोरिया जी, ढोलीजी ने बैग बुलाव
थे ई ओ ढोलीजी भल आविया जी, म्हारी डौढियां में ढोल घुराय
पौळा में ढोल घुराविया जी, म्हारा सुसरौजी नै सनेसौ दिराय
बजारां बापजी सा भल जावजौ जी, म्हारै सठवा सूंठ मोलाय
सठवा सूंठ मोलाविया जी, म्हारा जेठजी सा नै बैग बुलाव
थे ई जेठजी सा भल आविया जी, म्हारै अजमौ बैगो लाव
अजमौ बैगो लाविया जी, म्हारै सांईना नै बैगा बुलाव
बजारां में भल जावजौ जी, म्हारै पाली रौ पीळौ लाव।'

Scanned by CamScanner

पारिवारिक सम्बन्धों का ऐसा उल्लेख परस्पर विभाजित उत्तरदायित्वों का ऐसा लेखा-जोखा शायद ही कहीं मिले। सामाजिक मर्यादा को ध्यान में रखते हुए पति-पत्नी के लिए अजवाइन, सूँठ आदि कैसे ला सकता है? जब आह्लादातिरेक से इतना सारा कुटुम्ब-कबीला एकत्र हुआ है तो क्या ऐसे अवसर पर भी गोबर से आँगन लीपा जायेगा। नहीं, कदापि नहीं आज तो 'केसर गार घलावियौ' और 'मोत्या चौक पुराया' गया है। मौहल्ले-मौहल्ले से स्त्रियों के समूह गीत गाते हुए 'सूरज-पूजा' का उच्छब मनाने आ रहे है।

यद्यपि 'पीळा' राजस्थानी रमणी के लिए दाम्पत्य-प्रेम का प्रतीक है पर आज 'सूरज-पूजा' के दिन वह अकेली ही 'पीळा' ओढ़ना नहीं चाहती। 'सूरज-पूजा' के दिन 'पीळे' ओढ़ने को लेने के कौन-कौन अधिकारी हैं? पहला पीळा दाई को, दूसरा सास को, तीसरा जेठानी को, चौथा ननद को ओढ़ाकर पाँचवा पीळा अपने लिए माँगती है।

'पीळा' ओढ़ने के लिए राजस्थानी ललना अत्यन्त उत्कंठित रहती है। अत: कदैई नीं ओढ्यौ पीळो पोमचौ' कहकर वह सदैव प्रियतम से शिकायत करती रहती है। सामाजिक दृष्टिकोण से पुत्र-जन्म पर ही 'पीळा' ओढ़ना उचित माना जाता है। जैसा कि निम्न गीत में वर्णित हैं-

'गाढ़ा मारू म्हानै पीळौ दौ रंगाय
जेठाण्यां देराण्यां पीळै रा बेस
धण रै ई पीळौ लावज्यौ जी म्हारा राज
देराण्यां जेठाण्यां जाया लाडल पूत
कोई थे धण जाई धीवड़ी जी म्हारा राज।'

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में 'सुवावड़ साधनै' हेतु काम में आने वाली विविध वस्तुओं का भी वर्णन पाया जाता है। अजवाइन, सूँठ, गोंद आदि को लेकर अनेकानेक गीत मिलते हैं। सद्य: प्रसूता का पति अपनी नौकरी पर 'जोधाणै' को जा रहा है तो वह उससे प्रश्न कर बैठती है कि आप तो परदेस जा रहे है फिर मेरे लिए अजवाइन कौन खरीदेगा? पति घर के अन्य व्यक्तियों के नाम गिनाता है तो पत्नी प्रत्युत्तर में स्पष्टत: बता देंती है कि उन सभी का उसे लेशमात्र भी विश्वास नहीं है। कम वस्तु लाकर उसका दस गुना दाम बताते रहते हैं। स्त्री-मन के इस शक्की स्वभाव और साथ ही उसकी स्पष्टवादिता का मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

यद्यपि 'सुवावड सांधनै' का कार्य सास, देवरानी, जेठानी या ननद का होता है। इसके लिए कुछ -न-कुछ पारिश्रमिक रूप में मिलता भी है। पर एक लोक-गीत में जच्चा की कृपणता का बहुत ही रोचक चित्रण मिलता है। वह नहीं चाहती कि उक्त पारिवारिक सदस्यों से काम ले। क्योंकि ऐसा करने पर उनको भी लड्डू देने पड़ेंगे। अत: वह प्रियतम को ही यह काम सौंप देती है और साथ ही निर्देश भी देती है कि अजवाइन आदि कूटने में जोर की ध्वनि उत्पन्न न करना, अन्यथा उक्त सदस्यों को पता चल जायेगा। जच्चा की

कृपणता एवं पति की बेबसी पर श्रोता या पाठक को हँसी आ जाती है-

'औ धमकौ कड़ूंबो सुणेलौ
मंगळ गवाई रौ गुळियौ कठा सूं लावूं सेलीवाळा
औ धमकौ जोसी सुणैला
नाम कढ़ाई रौ रुपियौ कठा सूं लावूं सेलीवाळा
थे म्हारी दाई नै थे ई म्हारा नाई
थे ई म्हारा पाळा सिरकावौ सेलीवाळा।'

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में से कुछ में जच्चा व नवजात को दी जाने वाली देशी दवाइयों, घासों (शरीर को निर्व्याधि रखने हेतु दिया जाने वाला विशिष्ट प्रकार का पेय पदार्थ), पीपरामूळ आदि का वर्णन मिलता है। ये दवाइयाँ स्वाद में खारी होने के कारण जच्चा को अच्छी नहीं लगती। इनको लेने के लिए उसका जी नहीं करता। दवाइयाँ देने पर जच्चा द्वारा किये जाने वाले नाज-नखरों एवं नाक-भौंह सिकोड़ने का भी इन लोक-गीतों में बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है-

'दाझै दाझै म्हारी लाल कदम सी जीभ, पींपरामूळ लागै म्हानै चरचरी जी।'

जच्चा के गीतों में पारिवारिक उत्तरदायित्वों का उल्लेख भी मिलता है। परिवार के शान्त वातावरण का भी विवेचन हुआ है। ननद-भावज के प्रेम का चित्रण भी हुआ है और ईर्ष्यालु भावज या गृह-लाज को सर्वोपरि समझने वाली ननद का भी वर्णन किया गया है।

जच्चा के गीतों में 'जच्चा री गाळियाँ' से पुकारे जाने वाले गीत भी मिलते है। इनमे पति पत्नी के व्यंग्य-वाक्य, पति की कृपणता, छोटी-छोटी वस्तु के लिए भी आवश्यकता से अधिक बातें बना देना आदि विचार मिलते रहते हैं। यहाँ एक 'गाळ' उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है जिसमें पति ने एक दमड़ी का तेल जच्चा के प्रसव के समय खरीदा था। उसका हिसाब माँगने का वर्णन है। जच्चा ने भी कैसा स्पष्ट हिसाब बताया कि देखते ही बनता है-

'पन्ना राजा रै हालर जलमियौ दमड़ी रौ तेल मोलावियौ हो राज
फिरै नै गिरै ठाकुर लेखो मांगै, दमड़ी रौ तेल कठै बाळियौ
हालर रैन बसेरौ करियौ, जच्चा रै मैल दिवळौ बळियौ
नवदिन में नवरैण जगाई, नणदल नै मुकळाई ओ राज
लाल जी सा रौ ब्याव रचावियौ, × × ×
हळफळाया वाभीसा आया, तेल पल्लौ भर ढोळगा।'

राजस्थानी जच्चा के लोक-गीतों में दाम्पत्य-प्रेम का हास-परिहास भी देखने को मिलता है। 'सूरज-पूजा' के पश्चात पति दासी के हाथ समाचार भेजता है कि अब यदि पत्नी की स्वीकृति हो तो वह पत्नी के शयन-कक्ष में आकर सोये। पर पत्नी तो सब प्रकार के प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक ही देती है। पति पत्नी से कहता है कि वह पैरों की ओर ही सो रहेगा। परन्तु पत्नी के उत्तर बहुत ही तर्कपूर्ण है। पैरों की ओर शिशु के 'पोतड़े'

Scanned by CamScanner

सूख रहे है। सिरहाने की ओर पत्नी का 'अस्सी कळी' का घाघरा सूख रहा है। इन सबके अतिरिक्त प्रियतमा को मलांगी है और प्रियतम की ऐड़ियाँ खुरदरी हैं। ऐसे व्यक्ति को अपने शयन-कक्ष में कैसे सोने दे? पति की बेबसी और असहायावस्था पर बरबस ही हँसी आ जाती है।

उक्त गीतों के अतिरिक्त जच्चा के गीतों में 'हालरिया' नामक गीत भी बहुतायत में मिलते हैं, जो 'सूरज-पूजा' के अवसर पर गाये जो हैं। ये 'हालरिये' शिशु को पालने में सुलाकर झूला देते समय भी गाये जाते हैं। 'हालरियों' में प्रमुख रूप से बच्चे को मधुर स्वर-लहरी से सुलाने का वर्णन रहता है। उसके सोने-चाँदी के बने पालने की प्रशंसा की जाती है। शिशु के लिए 'गाडूला', 'झांझरिया', 'कड़ौलिया', 'लूंग' आदि बनवाने की बात भी कही जाती है। बालक को दूध-बताशे पिलाने को भी कहा जाता है। नवजात के लिए विविध प्रकार के कपड़े (आडलिया, टोपलिया, झुगली) बनवाने का वर्णन रहता है। बालक के विविध सम्बन्धों (माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि) की चर्चा रहती है-

'थारै झुगली टोपलिया सींवाडूं
गीगलिया रोवतड़ौ ढब जाई
थारै हांयली कड़ौलिया घड़ावूं
गीगलिया रोवतड़ौ ढब जाई।'

जन्म-संस्कार सम्पादित करते समय गाये जाने वाले जच्चा के गीतों में प्रमुख रूप से पुत्र-प्राप्ति की इच्छा, इसके लिए विविध देवी-देवताओं की मनौतियाँ मानना, पुत्री जन्म से होने वाले क्लेश, प्रसूता द्वारा विविध वस्तुओं को खाने की इच्छा व्यक्त करना, प्रसव-पीड़ा तथा इस वेदना से मुक्ति पाने हेतु प्रार्थना, दाई के नाज-नखरे, पुत्र होने पर भी पति को पुत्री होने का असत्य सन्देश भेजना, परिणामस्वरूप पत्नी को पीहर भेज देना, घर के सूनेपन से ऊबकर पत्नी को लाने जाना, सास के व्यंग्य-वाक्य, पत्नी द्वारा सही तथ्य का उद्घाटन, पुत्री-जन्म के पश्चात पत्नी के सथ किया जाने वाला अभद्र व्यवहार, पुत्र-जन्म से उत्पन्न आनन्दातिरेक, 'पीळा' ओढ़ने की इच्छा, सभी लोगों का सामर्थ्यानुसार 'नेग' चुकाना, 'घूघरी', बाँटना, 'सुवावड़' में काम आने वाले पदार्थों से सम्बन्धित अनेकानेक बातों एवं परिस्थितियों का वर्णन देखने को मिलता है।

(ख) झड़ूला चढ़ाने के

Scanned by CamScanner